15

प्रतापगढ़ में मेरी पत्नी के परिवार का इतिहास

जिस प्रकार भौतिक नियमों के अनुसार शरीर की रचना में पूर्व की कई पीढ़ियों के जीन्स का सम्मिश्रण रहता है और उनसे व्यक्ति के गुण, दोष, स्वभाव, शारीरिक रोग, आयु आदि निर्धारित और प्रभावित होते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक नियमों के अनुसार अपने ही नहीं, पूर्वजों के भले-बुरे कर्मों का सुफल-कुफल भी भावी संतति को भोगना होता है। केवल व्यक्ति पर ही नहीं, देश और जातियों पर भी यह नियम लागू होता है। यद्यपि इसको उस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता जिस प्रकार भौतिक क्षेत्र में सूक्ष्म-दर्शक यंत्रों द्वारा शारीरिक व्याधियों में जीन्स के प्रभाव को प्रमाणित किया जाता है, फिर भी औचित्य, सहज न्यायिक अनुभूति तथा इतिहास के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा यह बात समझ में आ सकती है। यह सही है कि प्रत्यक्षतः सदा ऐसा नहीं देखा जाता है परंतु पूर्वजों के पुण्य या पाप अपना प्रभाव दिखाते हैं और मनुष्य का जीवन उनसे थोड़ा-बहुत प्रभावित होता है, इसमें कम-से-कम मुझे तो कोई संदेह नहीं है। गीता में भगवान ने कहा है **अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथक् विधाः, विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।** अर्थात् स्थान, कर्ता, कार्य करने के साधन, तथा कार्य-संपादन की चेष्टा के अतिरिक्त पंचम वस्तु दैव है जो किसी भी कार्य के फल को प्रभावित करता है। इससे स्पष्ट है कि फल के पाने में 80 प्रतिशत तो व्यक्ति का उस काल का उद्योग है तथा 20 प्रतिशत पहले के अच्छे बुरे कर्मों का योग है जिसे दैव की संज्ञा दी गयी है। मेरी समझ में इस 20 प्रतिशत में कुछ प्रतिशत उसके पूर्वजों के अच्छे–बुरे कर्मों का योग भी अवश्य रहता होगा।

मैंने अपनी माता की तपस्या का वर्णन किया है जो उसने पुत्र-प्राप्ति की लालसा से की थी। अपने पिता की सात्विक एवं निश्छल प्रकृति का वर्णन भी किया है। मेरे गोद लेनेवाले पिता रायसाहब सुरजूलालजी, जो मेरे सगे ताऊ थे, के उज्ज्वल, लोक-संग्रही चरित्र की भी झाँकी थोड़ी-बहुत दे चुका हूँ। मैं अनुभव करता रहा हूँ कि उन सब के पुण्यकर्म ने समय-समय पर मेरी सहायता की है। एक बात और है। दैव के नाम से अभिहित अपने पूर्व जन्म के कृत्यों को तो व्यक्ति नहीं जानता है परंतु पूर्वजों के कृत्य तो उसके सम्मुख खुली हुई पुस्तक के समान हैं। अतः उनका शुभाशुभ प्रभाव वह अपने जीवन में प्रत्यक्षतः आँक सकता है।

उपर्युक्त चिंतन के पश्चात्, अपने पारिवारिक जीवन के निर्धारण में जिस प्रकार मैंने अपने पिता एवं माता के परिवारों का वर्णन किया है, उसी प्रकार अपनी पत्नी के परिवार का वर्णन करना भी उचित होगा।

मेरी पत्नी के पूर्वज राजस्थान के अलवर राज्य से आकर उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ नगर में बस गये थे। उसके दादा गणेशीलालजी अत्यंत धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे जिन्हें प्रतापगढ़ में भगतजी के नाम से पुकारा जाता था। वे व्यापार में कोई रुचि नहीं लेते थे तथा साधु–संतों की सेवा में ही अपना अधिकांश समय बिताते थे। अपने पुत्र की कपड़े की दुकान पर वे कभी नहीं बैठते थे। केवल भोजन करने तक का ही उनका घर से संबंध था। कई बार वे कपड़े की दुकान पर कुछ लेने के लिए ही आते थे और जब आते तो दुकान से कपड़ों का गट्ठर उठाकर चल देते और साधुओं की जमात में उसे बाँट आते। दुकान के गल्ले से भी मुट्ठी में रुपये, रेजगी आदि लेकर वे गरीबों में बाँटने निकल पड़ते थे। प्रतिदिन उनके लिए धर्मादे में बाँटने को एक मोटी राशि तो निश्चित थी ही, फिर भी समय मिलते ही वे अपनी दान-वृत्ति को पूरा करने में उपर्युक्त तरीके अपनाने से भी नहीं चूकते थे। एक बार उनके जी में आया कि प्रतापगढ़ में जनता के लिए कूआँ और धर्मशाला बननी चाहिए। उधर मेरी सास, जो मेरे श्वसुर की दूसरी पत्नी थी, उसने भी धर्मशाला बनाने की प्रेरणा अपने पति को दी। पिता के कहने का प्रभाव न भी पड़ा हो परंतु अधेड़ उम्र में विवाहित द्वितीय तरुणी पत्नी का आग्रह वे कैसे टाल सकते थे ! व्यापार में भी दिन दूना, रात चौगुना लाभ हो रहा था। उन्होंने प्रतापगढ़ के राजा साहब से धर्मशाला के लिए भूमि देने का अनुरोध किया जो राजा साहब

ने तुरत स्वीकार कर लिया। प्रतापगढ़ के बाजार से सटी हुई लंबी चौड़ी भूमि निःशुल्क मिल जाने पर मेरे श्वसुर ने धर्मशाला के लिए गाँव के धनिक व्यापारियों से भवन-निर्माण के लिए चंदा उगाहने का विचार किया। मेरी सास जब भी धर्मशाला के निर्माण की बात छेड़ती तो मेरे श्वसुर कहते कि यहाँ के सेठ लोगों से बात करनी है। तंग आकर एक दिन मेरी सास ने कहा 'आप सेठ नहीं हैं क्या ? क्या स्वयं अपनी कमाई से धर्मशाला का भवन नहीं बनवा सकते ?' बात लग गयी। मेरे श्वसुर बोले, 'मैं तो स्वयं बनवाना चाहता था पर सोचता था कि कहीं तू यह कहकर विरोध न करे कि तीन-तीन पुत्रियाँ ब्याहनी हैं, इस प्रकार खर्च करने से कैसे काम चलेगा !' अब यह निश्चित हो गया कि धर्मशाला का भवन अकेले मेरे श्वसुर द्वारा ही बनवाया जायगा। शहर में किसीसे भी धर्मशाला के बनवाने और उसे चलाने के लिए एक पैसा भी सहायता के रूप में नहीं लिया जायगा। धर्मशाला बनाने और उसे 40–50 वर्षों तक चलाने में मेरी सास ने तो इस नियम का पालन किया ही, अपनी सास की मृत्यु के बाद पिछले 30 वर्षों से मैंने भी इस नियम का पूर्णतः पालन किया है।

मेरे श्वसुर के पिताजी धर्मशाला के लिए ली गयी भूमि पर पहले एक कूआँ बनाने का निरंतर आग्रह कर रहे थे। उस समय तक प्रतापगढ़ में नल नहीं लगे थे और जल की आपूर्ति के एक मात्र साधन कूएँ ही थे। मेरे श्वसुर कूएँ के निर्माण के लिए शुभ मुहूर्त निकलवाना चाहते थे। परंतु यह कार्य टलता जाता था और जब भी मेरे श्वसुर के पिताजी (भगतजी) पूछते कि कूएँ में काम कब लगेगा तो उन्हें यही उत्तर मिलता कि मुहूर्त निकलवाना है। अंत में एक दिन बड़े तड़के भगतजी ने एक लोहे की छड़ लेकर स्वयं ही धर्मशाला के लिए ली गई भूमि पर गड्ढा खोदना शुरू कर दिया। दर्शकों की भीड़ लग गयी और जो भी पूछता कि भगतजी क्या कर रहे हैं तो उत्तर मिलता कि कूआँ खोद रहा हूँ। सूचना मिलते ही मेरे श्वसुर भागे-भागे आये। उन्होंने कहा कि मैं अभी पंडित को बुलाकर मुहूर्त निकलवाता हूँ, आप यहाँ से उठिए। सारे लोग यह तमाशा देख रहे हैं और मेरी हँसी उड़ा रहे है। भगतजी ने कहा, 'मुंहूर्त तो निकल गया। यदि इस काम को अभी आगे बढ़ाने को मजदूर लगें तो मैं उठ सकता हूँ अन्यथा मुझसे जितना कुछ संभव होगा, कूआँ खोदने का कार्य मैं स्वयं करूँगा।' विवश होकर उसी समय कूएँ की खुदाई का काम प्रारंभ हो

गया और लगे हाथों धर्मशाला के भवन का काम भी चालू हो गया। परंतु दुर्भाग्यवश धर्मशाला का भवन मेरे श्वसुर पूरा नहीं बनवा पाये और एकाएक उनका देहावसान हो गया। मेरी सास की उम्र उस समय केवल 23-24 वर्ष की थी।

मेरे श्वसुर को अपनी पहली पत्नी से जो संतानें हुई भी उनमें एक भी जीवित नहीं रह सकी। दूसरी पत्नी से अर्थात् मेरी सास से उन्हें पाँच पुत्रियाँ हुईं जिनमें दो की मृत्यु हो गयी थी। शेष तीनों जीवित पुत्रियों में मेरी भावी पत्नी सब से छोटी और पिता की मृत्यु के समय केवल डेढ़ साल की थी। अपनी पत्नी के अत्यधिक आग्रह पर उन्होंने अपने राजस्थान के गाँव से एक स्वजातीय बालक को गोद ले लिया था। 12-13 वर्ष की अल्पायु में ही उस बालक का विवाह भी बड़ी धूमधाम से किया गया था। बालक को गोद लेने के पत्नी के हठ के आगे मेरे श्वसुर को हार माननी पड़ी थी। परंतु इस क्षणिक मोह-जनित दोष के अतिरिक्त, जिसका कुफल मेरी सास को स्वयं ही भोगना पड़ा, उसमें अनेक उदात्त प्रवृत्तियों का समुच्चय था। वह एक असाधारण साहसी, बुद्धि-संपन्न एवं धैर्यशील महिला थी जिसकी तुलना सहज ही इतिहास-प्रसिद्ध रानी अहिल्याबाई के साथ की जा सकती है। दोनों के जीवन में कई और समानताएँ भी हैं। अहिल्याबाई को भी अल्पवय में वैधव्य और उसके बाद पुत्र के असामयिक निधन की वैसी ही पीड़ा झेलनी पड़ी थी जैसी मेरी सास ने झेली थी। परंतु विपरीत परिस्थितियाँ में भी जिस प्रकार अहिल्याबाई, बिना अपना धीरज खोये, राज्य-संचालन के साथ लोकहित के कार्यों में संलग्न रही, उसी प्रकार मेरे श्वसुर की मृत्यु के बाद 24 वर्ष की कच्ची उमर में वैधव्य की ज्वाला झेलती हुई, मेरी सास ने अपने विशाल स्टेट का जिस कुशलता से संचालन किया वैसा कोई मर्द भी शायद ही कर पाता। इसके साथ ही उसने न केवल पति द्वारा प्रारंभ किये हुए धर्मशाला के अधूरे काम को ही पूरा किया और उसे अपने श्वसुर और पति के नाम से **गणेशीलाल रामकुमार की धर्मशाला** का नाम दिया, अपने पति के राजस्थान के गाँव बिजवाड़ा में भी पति के नाम से एक नई धर्मशाला और बनवा दी। इसके अतिरिक्त उसने प्रतापगढ़ में एक जूनियर हाई स्कूल की भी स्थापना अपने नाम से की जिसका भवन इतना विशाल है कि उसमें एक कालेज भी आसानी से चलाया जा सकता है। प्रतापगढ़ के

व्यापारी समाज में स्त्री होते हुए भी मेरी सास का बड़ा दबदबा था और किसी भी सामाजिक काम में उसका वर्चस्व रहता था। हाजिर-जवाबी में तो वह किसीको अपने सामने टिकने ही नहीं देती थी। खंडेलवाल समाज की तो एक प्रकार से वही मुखिया मानी जाती थी और सभी सामाजिक कार्य उसकी राय से ही किये जाते थे। परंतु इन सब गुणों के रहते भी अपनी एक छोटी-सी जिद के कारण उसका सारा जीवन कंटकमय हो गया। मेरे श्वसुर गोद का लड़का नहीं चाहते थे। मेरी सास को उन्होंने बहुत समझाया कि तीनों लड़कियों में से किसीके भी पति को पुत्र के समान अपने पास रख लेंगे परंतु मेरी सास के हठ के सामने उन्हें मात खानी पड़ी। मेरी सास को, सुनते हैं, किसी ज्योतिषी ने बताया था कि पुत्र गोद ले लोगी तो तुम्हें अपना पुत्र भी हो जायगा। यही शायद उसके हठ का कारण था। इस गोद का दुष्परिणाम मेरी सास को तो आजीवन झेलना ही पड़ा, मेरे पुत्र कमलनयन को भी आज तक झेलना पड़ रहा है जो प्रतापगढ़ में अपने नाना की संपत्ति का मालिक है और इस गोद के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न मुकदमों को लड़ने में जीवन की कटुता और दुष्टों के कुचक्र का सीधा अनुभव पिछले तीस वर्षों से कर रहा है।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, मेरे श्वसुर की मृत्यु के बाद मेरी सास ने स्टेट का कुल व्यापार और जमींदारी का सारा बोझ बड़ी कुशलता से सँभाल लिया था। संपत्ति भी कम नहीं थी। 10-12 गाँव, प्रतापगढ़ नगर में 15-16 मकान, दर्जनों बाग-बगीचे तथा कपड़े की दुकान। स्वामिभक्त मुनीम राम प्रसाद और सेवकों की सहायता से सारा कार्य पति की मृत्यु के बाद भी पूर्ववत् चलता रहा। इन सबके साथ-साथ अपने नाम से स्थापित स्कूल के अतिरिक्त धर्मशाला की सम्यक् व्यवस्था का कार्य भी मेरी सास चलाती रहती थी क्योंकि वह लोकहित का कार्य उसका सबसे प्रिय कार्य था जिसमें उसके पति की स्मृति भी जुड़ी थी।

मेरी सास के पोष्यपुत्र दुर्गाप्रसाद ने वयस्क होने के बाद इतने बड़े बोझ को सँभालने में मेरी सास को सहायता देनी शुरू ही की थी कि भगवान ने उसे उठा लिया और अहिल्याबाई के समान मेरी सास को यह विष का घूँट भी पीना पड़ा। मेरे श्वसुर की मृत्यु से आया हुआ दैवी संकट तो किसी प्रकार रो-धोकर मेरी सास ने सँभाल लिया परंतु दुर्गाप्रसाद की अल्पायु में मृत्यु ने जो दूसरा संकट उत्पन्न किया उससे तो उसे आजीवन

जूझना पड़ा और आज 60–70 वर्षों के बाद भी उस संकट का अंत नहीं हुआ है। मेरी सास इसका दोषी अपने को ही मानती थी और अपने पति से गोद का लड़का लाने के अपने हठ पर पछताती थी। एक बार मेरे श्वसुर ने गोद न लेने के पक्ष में यहाँ तक कह दिया था कि क्या तुम यह सोचती हो कि मैं शीघ्र ही मर जाऊँगा जो गोद का लड़का लाने को इतनी आतुरता दिखा रही हो। मेरी सास ने उत्तर दिया, 'यही समझ लीजिए। मुझे गोद का लड़का चाहिए।' इसके बाद कहने को क्या रह जाता था! मेरे श्वसुर ने यद्यपि फिर भी समझाने का यत्न किया कि खून-पसीना एक करके मैंने यह संपत्ति जोड़ी है, इसे अपनी लड़कियों को सौंपने में ही सुख और संतोष होगा। इसे पराये हाथ में न जाने दे, परंतु होनी तो टाली नहीं जा सकती। दशरथ ने कैकेयी को क्या कम समझाया था ! भगवान भी जब मनुष्य रूप में आते हैं तो होनी के आगे उन्हें नत-मस्तक ही होना पड़ता है। यह रामायण और महाभारत की कथा से सहज ही समझा जा सकता है। क्या स्वयं भगवान कृष्ण भी महाभारत के युद्ध को या अपने समस्त यादव-वंश के विनाश को टाल सके थे!

दुर्गाप्रसाद की मृत्यु एकाएक हो गयी। उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। नगर के पंच लोगों ने यह सोचा कि इतनी बड़ी संपत्ति की केवल दो विधवाएं स्वामिनी हैं, यदि आपस में वादविवाद बढ़ेगा तो बड़ी बदनामी होगी। मेरे श्वसुर के पिता भगतजी की कीर्ति तथा मेरी सास एवं ससुर की बनायी धर्मशाला के कारण प्रतापगढ़ के प्रबुद्ध समुदाय तथा व्यापारी-वर्ग में मेरी सास की बड़ी प्रतिष्ठा थी। बड़ी विवाहित पुत्री की तो मृत्यु हो चुकी थी परंतु उनकी और दो पुत्रियाँ थीं जिनका विवाह करना था और जिनकी सगाई भी बड़े-बड़े घरों में हो चुकी थी। इन सब कारणों से सभी की सहानुभूति मेरी सास के साथ थी। उस समय के कानून के अनुसार मेरी सास को संपत्ति में केवल गुजारे का अधिकार था क्योंकि दुर्गाप्रसाद बालिग होकर अपने गोद लेनेवाले पिता रामकुमारजी की संपत्ति पर स्वामित्व पा चुके थे। माता को उस समय पुत्र से या पुत्र जीवित न हो तो पुत्रवधू से केवल गुजारा पाने का अधिकार था। उन्हें अपने गुजर-बसर के अतिरिक्त दोनों पुत्रियों का बड़े-बड़े घरों में अपनी मर्यादा के अनुसार ही विवाह भी करना था। अतः सारी बातों पर विचार करके पंचों ने मेरी सास को गुजारे के लिए आधी संपत्ति देने का निश्चय

किया। यद्यपि मेरा विवाह उस समय तक नहीं हुआ था, परंतु सगाई हो चुकी थी। मैं एक अन्य विवाह में एलिचपुर से आयी एक बरात में बराती होकर प्रतापगढ़ गया था जिसका जिक्र पहले आ चुका है। उस समय पंचों से मेरी बात हुई थी और उन्होंने मुझे कहा था कि आपकी सास को हम लोगों ने गुजारे के एवज में आधी संपत्ति दिलवा दी है। पंचों के इस फैसले को अदालती मान्यता भी दे दी गयी थी कि दोनों विधवाओं का पूरी संपत्ति में आधा-आधा भाग होगा। धर्मशाला का पूरा प्रबंध मेरी सास के हाथों में आजीवन छोड़ दिया गया और यह व्यवस्था कर दी गयी थी कि आगे के लिए भी उसकी और जैसी भी व्यवस्था वे उचित समझेंगी, करेंगी।

इस अदालती राजीनामें की डिग्री के बाद दुर्गाप्रसाद की बहू ने अपने पिता के दबाव में आकर सरकार में आवेदन देकर सारे स्टेट को कोर्ट ओफ वार्ड्स के हवाले करा दिया। इसके साथ ही उसने अदालत में आधे-आधे हिस्से वाले पंचफैसले पर बनी अदालत की डिग्री रद्द करने का मुकदमा भी दायर कर दिया। उसने अपने वादपत्र में यह भी लिख दिया कि मेरी सास को केवल गुज़ारे का हक़ है। दुर्गाप्रसाद की मृत्यु के समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। उसने कोर्ट ओफ वार्ड्स के दौरान ही एक मृत संतान को जन्म दिया। कोर्ट आफ वार्ड्स से स्टेट को मुक्त कराने के लिए मेरे परिवार से पूर्ववर्णित गुलाबचंद नामक मुनीम नियुक्त था। कोर्ट आफ वार्ड्स का मामला तत्कालीन मंत्री श्री रफी अहमद किदवई के विभाग से संबंधित था। मेरी सास जब इस संबंध में लखनऊ, उनसे स्वयं मिलने गयी तो उन्होंने कहा 'माताजी, आप चिंता न करें। मैं आपकी धर्मशाला में तीन बार ठहर चुका हूँ। आपके पति जैसे धर्मात्मा व्यक्ति की पुत्रियों के विवाह में कठिनाई उपस्थित हो, यह कैसे हो सकता है! आप निश्चिंत होकर लौट जायँ। आपकी पुत्रियों का विवाह बड़ी धूमधाम से होकर रहेगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ, आपकी संपत्ति कोर्ट ओफ वार्ड्स से मुक्त होकर रहेगी। कोर्ट ओफ वार्ड्स व्यावसायिक परिवारों के लिए थोड़े ही बना है!' रफी अहमद किदवई जैसे बात के धनी और निःस्वार्थ मंत्री आज के माहौल में कठिनाई से दिखाई देंगे। यह मामला चल ही रहा था कि द्वितीय महायुद्ध के कारण एकाएक उत्तर प्रदेश सरकार की कांग्रेसी सरकार को त्यागपत्र देने की नौबत आ गयी। त्यागपत्र की अफवाह सुनकर, हमारे यहाँ का मुनीम गुलाबचंद, जो कोर्ट ओफ वार्ड्स की पैरवी

के लिये नियुक्त था, भागा-भागा लखनऊ गया। जब कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग समाप्त होने के बाद किदवई साहब बाहर निकले तो वह उनकी मोटर के पास खड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने किदवई साहब से कहा,– 'अब प्रतापगढ़ स्टेट के कोर्ट ओफ वार्ड्स का क्या होगा! आप तो त्यागपत्र देने जा रहे है।' किदवई साहब ने कहा,– 'मैं प्रतापगढ़ की मुसम्मात का स्टेट कोर्ट ओफ वार्ड्स से छूटने के पहले मंत्रिपद कहाँ छोड़नेवाला हूँ! तुम निश्चिंत रहो।' किदवई साहब ने अपने आश्वासन का पालन किया और दूसरे दिन ही प्रतापगढ़ के डिप्टी कमिश्नर के नाम से तार द्वारा सरकारी आदेश आया –

'प्रतापगढ़ का गणेशीलाल रामकुमार के नाम से मुसम्मात सुरजीदेवी का स्टेट कोर्ट ओफ वार्डस से मुक्त किया जाता है। कमिश्नर को आदेश दिया जाता है कि वे तुरत उसका स्वत्व सरकार द्वारा नियुक्त तीन ट्रस्टियों को सौंपकर इस आज्ञा के पालन की सूचना सरकार को तार द्वारा अविलंब दें।' तीन ट्रस्टी थे, मेरे ताऊजी गयाप्रसादजी, मेरी पत्नी की बड़ी बहन के होनेवाले श्वसुर विनोदीलालजी और प्रतापगढ़ के सेठ बाबूलालजी। सरकार द्वारा सरकारी आदेश के तार की प्रतिलिपियाँ तीनों ट्रस्टियों को स्वत्वग्रहण करने के लिए प्रेषित कर दी गयी थीं। इस प्रकार किदवई साहब ने निःस्वार्थ भाव से सारा काम एक कलम से संपन्न कर दिया और उसको पूरा करने में जरा सी भी ननु-नच की गुंजाइश नहीं छोड़ी। उनकी इस निःस्वार्थ एवं कुशल कार्यपद्धति ने उन्हें भारत सरकार के डाक-विभाग तथा अन्य-विभागों के मंत्री के नाते भी, जो यश दिलाया वह दूसरा कोई भी मंत्री आजतक नहीं पा सका है।

यह घटना 1939 की है। 1941 की फरवरी मे मेरा विवाह हुआ जिसका विवरण मैं पहले दे चुका हूँ। मेरे विवाह के अवसर पर मेरे मित्र राधेश्याम गुप्त ने एक शुभाशंसा-पत्रिका कवियों द्वारा लिखवा कर प्रकाशित की थी जिसमें गया के सुप्रसिद्ध कवि मोहनलाल महतो ने लिखा था –

खिलें सुमन बन जीवन-मगपर नेह-मिलन की घड़ियाँ
और मुबारक हों ये तेरी मणिमंडित हथकड़ियाँ

बेढबजी ने भी लंबी कविता लिखी थी जिसके अंत की पंक्ति थी –

निशिवासर काव्य के कानन में
खिलता यह गया का गुलाब रहे

बरातियों में बेढबजी तथा राधेश्याम गुप्त साहित्यिकों के प्रतिनिधि थे। शांतिप्रिय द्विवेदी और शिवमंगलसिंह 'सुमन' भी भाग लेनेवाले थे परंतु समय पर पहुँच नहीं पाये।

बेढबजी ने मुझसे कहा था कि अपनी पत्नी के प्रथम दर्शन की अनुभूति को काव्य की वाणी देना। मैंने उक़्त अवसर पर अपनी पत्नी की दुबली-पतली, लंबी और गौर देहयष्टि को देखते हुए निम्नलिखित **प्रथम दर्शन** कविता लिखी जो मेरी पुस्तक **ऊसर के फूल** में **प्रथम दर्शन** के शीर्षक से संकलित है।

प्रथम दर्शन

रूपसि! तुम शशिकर-सी सुंदर नव शशि-रेखा-सी मन हरती
स्वर्गंगा की लघु लहरी-सी उर में स्वर्गीय विभा भरती
जौ के अंकुर-सी नम्र उगी, कृश दीपक की लौ-सी कंपित
वानीर वृंत की परछाईं-सी, सरसी में झिलमिल करती

तुम उषाकाल की कुसुम-अवलि, मधुपों से अभी अछूती हो
पतझड़ के पिक की कूक, अरी! तुम तो वसंत की दूती हो
तुम कृश-काया माया जैसी विभु की, सुरधनु की छाया-सी
बाँसुरी-सदृश मृदु-तानभरी, प्राणों के स्तर-स्तर छूती हो

तुम वेद-ऋचा की उपमेया-सी, नख से शिख तक पूरी हो
तुम पंक्ति प्रेम के भूले-से गायन की एक अधूरी हो
पावन कुमारिका की स्मिति-सी, तुम प्रणय-भावमय परिचय की
जो निज में कभी समा न सकी, तुम वही क्षितिज की दूरी हो

पावस-बूँदों की प्रथम लड़ी-सी, तुम आभा की मतवाली
मृदु कुसुम-छड़ी-सी मन्मथ के कर की, शर-सी बिँधनेवाली
जलनिधि के तल में कंपित तुम, शतरत्नच्छाय लता जैसी
तुम दुबली-पतली नील-गगन में विद्युत-रेखा-सी, आली!

तुम नील विभा की उगी तिमिर की, नन्ही-सी तारिका नयी
उँगली से छूई हुई तुरत की, छुईमुई-सी लाजमयी
तुम एक तार-सी, स्वजनि! एकतारा की, लय में बँधी अलस
तुम मुकुलित जूही-कलिका-सी जो माला में गूँथी न गयी

तुम पतली मधु-निर्झरणी-सी गुंजित उपलों में कल-कल-स्वर
तुम क्षीण उषा-सी खड़ी विहँसती उदयाचल की चोटी पर
तुम श्याम कसौटी पर खींची तप चुके स्वर्ण की रेखा-सी
उर्वशी-भृकुटि-सी चढ़ी धनंजय-धनु की तुम शिंजिनी सुघर
तुम निशि-मृणाल-सी कमल-वदन में स्वर-मधुकर निष्पंद लिये
तुम हरित-कंचु प्रातः-दुर्वा-सी किरणों का मकरंद पिये
तुम क्षितिज-तटी-सी क्षीण-कटी, सचकित सिमटी आलिंगन में
मंदस्मित, झुक सागर का जल पीते घन-सी, दृग बंद किये
अधखुले कपाटों से आयी तुम क्षीण, कक्ष में राका-सी
तुम प्रावृट्-श्याम पुतलियों में उड़ती क्रमबद्ध वलाका-सी
तुम अगुरु-धूम-सी, चूम अधर, घुल गयी श्वास-सौरभ में जो
तुम अरुण किसलयों में उड़ती मन्मथ की विजय-पताका-सी